Poonam Shodh Rachna (ISSN 2456-5563)
(A Multidisciplinary, Peer Reviewed and Refereed Journal)
Vol.3, Issue.VII, July 2024, Pc : PSR-2407016
https://doi.org/10.56642/psr.v03i07.005

"वैदिक साहित्य मे योग का अर्थ निरूपण: एक अध्ययन"

दीपा आर्या [1] , डॉ कृष्णा अग्रवाल [2]
[1] शोधार्थी, योग विद्यालय
निर्वाण विश्वविद्यालय, जयपुर।
deepa.arya@nirwanuniversity.ac.in
[2] सहायक प्रोफेसर, योग विद्यालय
निर्वाण विश्वविद्यालय, जयपुर।
krishna.agarwal@nirwanuniversity.ac.in

शोधसार

*योग की प्राचीन परंपरा, जो भारत की **दार्शनिक** और आध्यात्मिक विरासत में गहराई से निहित है, **आत्म**-प्राप्ति और मुक्ति के अंतिम लक्ष्य की ओर ले जाने वाले विविध मार्गों को सम्मिलित करती है। इन मार्गों मेंअष्टांग योग, **क्रिया** योग, हठ योग और राजयोग महत्वपूर्ण शाखाओं के रूप में उभरे हैं जो प्रत्येक अभ्यास और अंतर्दृष्टि का एक प्रतिमान **प्रस्तुत** करते हैं। इस शोध लेख में, हमने 'योग' शब्द व उसके अर्थ की भाषाई तथा प्रायोगिक उत्पत्ति की गहराई से पड़ताल की है।शोध लेख, योग की मूलभूत अवधारणाओं के माध्यम से निर्देशित होते हुए, पाणिनी द्वारा पहचानी गई तीन पृथक-पृथक क्रियाओं के **माध्यम** से 'योग' शब्द की जड़ों का विश्लेषण करता है। यह प्रत्येक मूल क्रिया से जुड़े गहन अर्थों को स्पष्ट करता है तथा 'योग' के **प्राथमिक** अर्थ समाधि पर जोर देता है। ऋषि व्यास और महर्षि पतंजलि की टिप्पणी पर आधारित, लेख मानसिक उतार-चढ़ाव के संयम के रूप में योग के उद्देश्य को स्पष्ट करता है।यह अन्वेषण 'युजिर-योगे' तक फैला हुआ है, जो सांसारिक संदर्भों में संबंध और मिलन के अर्थों को उजागर करता है, जबकि इसे व्यक्तिगत आत्मा और परमात्मा के मध्य मिलन के रूप में व्याख्या करने **में** विरोधाभास को उजागर करता है। लेख 'युजिर-योगे' की **परिवर्तन**कारी प्रक्रिया को और स्पष्ट करता है, जिसमें मन के उतार-चढ़ाव और आत्मा या अंतिम वास्तविकता के मध्य संबंध पर जोर दिया गया है। तीसरी मूल क्रिया, 'युज-संयमने' की जाँच की गई है, जो मन और इंद्रियों पर नियंत्रण रखने में इसके महत्व पर प्रकाश डालती है। भगवद्गीता के श्लोक प्रस्तुत किया गए हैं, जिसमें **सर्वोच्च** शांति और मुक्ति की ओर ले जाने वाले अनुशासित अभ्यास और आत्म-नियंत्रण पर जोर दिया गया है।*

*मानव जीवन के भौतिक, भाषाई और मानसिक पक्षों के अंतर्संबंध पर भर्तृहरि के समग्र दृष्टिकोण का पता लगाया गया है, जिसमें मानव अस्तित्व के विभिन्न पक्षों को शुद्ध करने में योग सहित विभिन्न विज्ञानों की भूमिका पर जोर दिया गया है।इसके पश्चात यह लेख वैदिक छंदों, उपनिषदों और **श्रीमद्भग**वद्गीता में वर्णित गहन अंतर्दृष्टि को उजागर करता है, जो योग की अवधारणा के विकास को दर्शाता है। ऋग्वेद संहिता, अथर्ववेद और कठोपनिषद् के छंद विपरीतताओं के संयोजन, मन पर **नियंत्रण** और मुक्ति की ओर ले जाने वाले ज्ञान की प्राप्ति के रूप में योग की प्राचीन समझ की झलक प्रदान करते हैं। श्रीमद्भगवद्गीता **कर्म** योग, ज्ञान योग और भक्ति योग को स्पष्ट करने में मुख्य भूमिका निभाती है, जो अंतिम लक्ष्य की ओर जाने वाले विविध **मार्गों** का व्यापक अवलोकन प्रस्तुत करती है। यह लेख योगिक यात्रा के अभिन्न पक्षों के रूप में कुशल कार्य, समभाव और भक्ति के सार को उजागर करते हुए, भगवान कृष्ण की शिक्षाओं पर **प्रकाश** डालता है।*

*जैसे-जैसे अन्वेषण आगे बढ़ता है, ध्यान हठ योग पर केंद्रित हो जाता है, इसके घटकों और 'ह' (Ha) और 'ठ' (ṭha) की परस्पर क्रिया को विच्छेदित किया जाता है। हठ योग को राजयोग की अंतिम अवस्था से जोड़कर प्राणायाम जैसी प्रथाओं के माध्यम से प्राण को संतुलित करने के महत्व को **दर्शाया** गया है।तत्पश्चात् लेख राजयोग पर प्रकाश डालता है, इसकी समाधि और जीवनमुक्ति जैसे शब्दों के साथ इसके पर्यायवाची **स्वरूप** पर प्रकाश डाला गया है। हठ योग और राजयोग के **अंतर्संबंध** को रेखांकित किया गया है, जो अंतिम लक्ष्य की खोज में उनकी पारस्परिक निर्भरता पर जोर देता है।*

*यह शोध लेख योग की परतों को खोलता है, इसकी भाषाई जड़ों, मूलभूत अवधारणाओं और हठ और राजयोग के मध्य जटिल अंतर्संबंधों की खोज करता है। प्राचीन **ग्रंथों** और दार्शनिक ग्रंथों से अंतर्दृष्टि को संश्लेषित करके, लेख का उद्देश्य योग की समृद्ध समझ प्रदान करना है, जो आत्म-प्राप्ति और मुक्ति के मार्ग पर साधकों के लिए एक रोडमैप पेश करता है।*

बीज शब्द *: योग,अर्थ,समाधि, नियंत्रण, राजयोग,ग्रंथ ।*

योग का शाब्दिक अर्थ

संस्कृत व्याकरण में, 'योग' शब्द की उत्पत्ति को मूल क्रिया 'युज' के माध्यम से समझाया गया है, जैसा कि पाणिनि ने कहा है। 'योग' शब्द की उत्पत्ति, करण और भाववाच्य रूपों में मूल क्रिया 'युज' के पश्चात 'घन' प्रत्यय जोड़ने से होता है। पाणिनि ने अपने व्याकरण के गणपाठ में तीन मूल क्रियाओं 'युज' की पहचान की है - दिवादि-गण में 'युज-समाधौ', रुधिरादि-गण में 'युजिर-योगे' और चुरादि-गण में 'युज-संयमने'। ये तीनों क्रियाएं 'योग' शब्द को जन्म देती हैं। (**Sanskrit.nic.in, 2024, Jan. 22, p**. 2) मूल क्रिया 'युज-समाधौ' का अर्थ है समाधि, 'युजिर-योगे' का अर्थ है संयोजन या मिलन और 'युज-संयमने' का अर्थ है नियंत्रण या नियमन। 'योग' शब्द मूल क्रिया 'युज-समाधौ' से बना है जिसे इस शब्द का प्राथमिक या मुख्य अर्थ माना जाता है। शेष मूल क्रियाओं से व्युत्पन्न 'योग' शब्द का प्रयोग आलंकारिक और सांसारिक दोनों संदर्भों में गौण या पारंपरिक अर्थ में किया जाता है। (**Sanskrit.nic.in, 2024, Jan. 22, p**. 2)

योग सूत्र पर टिप्पणी में, ऋषि व्यास 'योग' शब्द को समाधि के रूप में परिभाषित करते हैं:

"योगः समाधिः" (**Yogasutra Vyasbhashya**, 1.1, **p. 1**)

अर्थात, योग ही समाधि है। दूसरे शब्दों में, 'योग' शब्द समाधि की स्थिति का प्रतीक है, जहां योगी को अपने मौलिक 'स्व' का दर्शन प्राप्त होता है। ऋषि व्यास 'योग' और 'समाधि' को पर्यायवाची और एक ही अर्थ वाला मानते हैं। महर्षि पतंजलि, अपने योग सूत्र में, योग के उद्देश्य को इस प्रकार बताते हैं:

"योगश्चित्तवृत्ति-निरोधः" (योगसूत्र, 1.2, पृ. 12)

अर्थात, चित्त के उतार-चढ़ाव की समाप्ति ही योग है। योग समाधि की स्थिति है, और इसका प्राथमिक लक्ष्य, जैसा कि महर्षि पतंजलि द्वारा परिभाषित किया गया है, चित्त के संशोधनों का संयम है। 'युजिर-योगे' धातु क्रिया का अर्थ है योग करना या जोड़ना। योग करने या जुड़ने की अवधारणा का तात्पर्य दो परस्पर पदार्थों या तत्त्वों के मिश्रण या संयोजन से है, जैसे दूध में पानी का मिश्रण। गणितीय शब्दों में, अभिव्यक्ति **1+1=2** को 'योग' भी कहा जाता है। ये सभी अर्थ सांसारिक सन्दर्भ में प्रयुक्त होते हैं। यहाँ मूल क्रिया 'युजिर-योगे' का अर्थ मन के उतार-चढ़ाव (चित्त वृत्ति) को आत्मा (आत्मा) या परम वास्तविकता, ब्रह्म के साथ जोड़ना है। इस प्रक्रिया से माया का भ्रम दूर हो जाता है, जिससे आत्मा को अपने वास्तविक स्वरूप को पहचानने की अनुमति मिलती है। इस प्रकार 'युजिर-योगे' का उद्देश्य भी योग या समाधि ही है, जहाँ समाधि की अवस्था की प्राप्ति अंतिम लक्ष्य की प्राप्ति में गौण भूमिका निभाती है। 'युजिर-योगे' का उद्देश्य मन की गतिविधियों और उच्च स्व के मध्य संबंध स्थापित करना है, जिससे भ्रम (माया) के आवरण को हटाने में आसानी होती है। इस संबंध के माध्यम से, आत्मा को अपने मूल सार में अंतर्दृष्टि प्राप्त होती है। इस प्रकार, 'युजिर-योगे' का अंतिम उद्देश्य योग और समाधि के लक्ष्यों का पर्याय है, जहां समाधि की स्थिति प्राप्त करना परम सत्य की प्राप्ति की दिशा में एक पूरक उपाय के रूप में कार्य करता है।

मूल क्रिया 'युज-संयमने' का अर्थ है अपने मन और इंद्रियों पर संयम या नियंत्रण रखना है। भगवद्गीता में कहा गया है:

"युञ्जन्नेवं सदाऽऽत्मानं योगी नियतमानसः। शान्तिं निर्वाणपरमां मत्संस्थामधिगच्छति।।" (भगवद्गीता, **6.15)**

अर्थात इस प्रकार, लगातार स्वयं को अनुशासित करते हुए, वश में किए गए मन वाला योगी मुझमें स्थित होकर परम शांति, परम निर्वाण प्राप्त करता है। यह श्लोक निरंतर आत्म-अनुशासन के अभ्यास पर जोर देता है, जहां योगी, शरीर, मन और कार्यों पर नियंत्रण पाने के पश्चात शांति की स्थिति प्राप्त करता है। देह की समाप्ति के पश्चात, ऐसा अनुशासित योगी मुक्ति (मोक्ष) प्राप्त करते हुए, दिव्य निवास तक पहुँच जाता है।

इस प्रकार, संयम का अभ्यास, जैसा कि 'युज-संयमने' में निहित है, समाधि की स्थिति प्राप्त करने के लिए एक सहायक साधन के रूप में कार्य करता है। इसलिए, भले ही अन्य दो 'युज' जड़ों का अर्थ गौण या पारंपरिक अर्थ में उपयोग किया जाता है, उन्हें योग की खोज में योगदान देने वाला भी माना जाना चाहिए।

छठी शताब्दी ईस्वी में प्रसिद्ध वैयाकरण भर्तृहरि द्वारा लिखित "वाक्यपदीय" नामक व्याकरणिक ग्रंथ में, **"**ब्रह्मकांड" नामक खंड में निम्नलिखित श्लोक पाया जाता है, जिसमें तीन प्रकार की शुद्धियों की चर्चा की गई है:

"कायवाग्बुद्धिविषया ये मलाः समवस्थिताः। चिकित्सालक्षणाध्यात्मशास्त्रैस्तेषां पवित्रायः।।" **(**भर्तृहरि एवं अवस्थी (137) , 2006, पृ. 448)

तात्पर्य है, शरीर, वाणी और मन से संबंधित अशुद्धियाँ, जो उपस्थित हैं, चिकित्सा, व्याकरण और आध्यात्मिक ज्ञान के विज्ञान के माध्यम से क्रमिक रूप से शुद्ध की जाती हैं। अर्थात शरीर, वाणी और बुद्धि तीनों प्रकार के मलों की शुद्धि क्रमशः चिकित्सा शास्त्र, व्याकरण शास्त्र और योग शास्त्र के द्वारा होती है। (श्रीवास्तव, 2006, पृ. 17) यह श्लोक बताता है कि शरीर, वाणी और मन से जुड़ी अशुद्धियों को चिकित्सा, व्याकरण और आध्यात्मिक ज्ञान के संबंधित विज्ञान के माध्यम से क्रमिक रूप से शुद्ध किया जा सकता है। चिकित्सा विज्ञान, भाषाई विश्लेषण (व्याकरण), और आध्यात्मिक शिक्षाएं, जैसे कि योग के क्षेत्र में पाए जाने वाले विषय, मानव अस्तित्व के इन विभिन्न पक्षों को शुद्ध करने में विशिष्ट भूमिका निभाते हैं। यह श्लोक भर्तृहरि के समग्र दृष्टिकोण को दर्शाता है, जो मानव जीवन के भौतिक, भाषाई और मानसिक पक्षों के अंतर्संबंध को स्वीकार करता है और समग्र शुद्धि और कल्याण के लिए इन पक्षों को संबोधित करने में विभिन्न विज्ञानों के महत्व पर जोर देता है।

<u>वेदों मे योग का अर्थ</u>

ऋग्वेद संहिता में 'योग' शब्द की पहली व्याख्या निम्नलिखित श्लोक में मिलती है:

स घा नो योग आ भुवत्स राये स पुरंध्याम् । गमद्वाजेभिरा स नः **(ऋग्वेद 1-5-3)**

उक्त ऋचा का तात्पर्य है कि वह इंद्र, जो हमारे लक्ष्यों (बुद्धि) की ओर निर्देशित होकर, हमें कुशल बनाता है, धन और समृद्धि से परिपूर्ण बनाता है, और पौष्टिक भोजन के साथ हमारे पास आता है, वह हमारा मार्गदर्शक हो। यहां, 'योग' शब्द की व्याख्या समाधि के रूप में की गई है, और प्रार्थना जागृत बुद्धि (ऋतंभरा प्रज्ञा) और विवेकपूर्ण ज्ञान के माध्यम से इस अवस्था की प्राप्ति के लिए है।

एक अन्य ऋग्वैदिक ऋचा में 'योग' शब्द का उल्लेख इस प्रकार है:

"योगेयोगे तवस्तरं वाजेवाजे हवामहे । सखाय इन्द्रमूतये ॥" (ऋग्वेद, 1-30-7)

हर योग में, हे इंद्र, शक्तिशाली, हम आपको सुरक्षा के लिए बुलाते हैं, हे मित्र, हे अमर। यहाँ 'योग' की व्याख्या धार्मिक कार्यों (सत्कर्म) के रूप में की गई है, जो पुण्य कार्यों के शुभ प्रारंभ का प्रतीक है। भक्त, साधक के रूप में, सुरक्षा के लिए शक्तिशाली इंद्र को बुलाते हैं।

अथर्ववेद योग और कल्याण की प्राप्ति का संकेत देने वाला एक श्लोक प्रस्तुत करते हुए योग का अर्थ स्पष्ट करता है:

"अष्टाविंशानि शिवानि शग्मानि सह योगं भजन्तु मे।
योगं प्र पद्ये क्षेमं च क्षेमं प्र पद्ये योगं च. नमोऽहोरात्राभ्यामस्तु॥" (अथर्ववेद, 19-8-2)

योग सहित शुभ अट्ठाईस नक्षत्र मुझ पर कृपा करें। मैं कल्याण में योग और योग में कल्याण प्राप्त करूँ। दिन और रात को नमस्कार। इस श्लोक में, 'योग' कल्याण के लिए आध्यात्मिक प्रथाओं (आध्यात्मिक योग) की प्राप्ति से जुड़ा है। साधक को शांति, संतुष्टि और योग के अभ्यास से प्राप्त परम आनंद का आशीर्वाद देने के लिए नक्षत्रों का आह्वान किया जाता है। ये वैदिक छंद सामूहिक रूप से योग की गहन समझ को दर्शाते हैं, जिसमें कल्याण और आत्मज्ञान की प्राप्ति के लिए मानसिक अनुशासन, अच्छे कार्य और आध्यात्मिक अभ्यास सम्मिलित हैं।

उपनिषदों मे योग का अर्थ

कठोपनिषद् में योग की अवधारणा को समझाते हुए लिखा गया है:
यदा पञ्चावतिष्ठन्ते ज्ञानानि मनसा सह। बुद्धिश्च न विचेष्टते तामाहुः परमां गतिम् ॥
तां योगमिति मन्यन्ते स्थिरामिन्द्रियधारणाम् ।अप्रमत्तस्तदा भवति योगो हि प्रभवाप्ययौ ॥
(कठोपनिषद्, 2-3-11)

जब मन सहित पांचों इंद्रियां ज्ञान में स्थिर रहती हैं और बुद्धि नहीं डगमगाती है, वह सर्वोच्च अवस्था मानी जाती है। वे इसे योग कहते हैं, इंद्रियों का स्थिर नियंत्रण। जो प्रमाद नहीं करता वो इसे प्राप्त करता है, क्योंकि योग ही सबका स्रोत और अंत है। संक्षेप में, यह श्लोक ज्ञान की खोज में इंद्रियों और मन पर अटूट नियंत्रण के रूप में योग की स्थिति का वर्णन करता है। बुद्धि केंद्रित रहती है और व्यक्ति उच्च जागरूकता की स्थिति प्राप्त करता है। योग की यह अवस्था सभी प्रयासों का स्रोत और अंतिम लक्ष्य दोनों है।

कठोपनिषद् का एक अन्य श्लोक अध्यात्म योग के ज्ञान की परिवर्तनकारी शक्ति पर जोर देता है:

"अध्यात्मयोगाधिगमेन देवं मत्वा धीरो हर्षशोकौ जहाति। " **(**कठोपनिषद्, **1/2/12)**

बुद्धिमान व्यक्ति, अध्यात्म योग का ज्ञान प्राप्त करके, सुख और दुःख को त्याग देता है। यह श्लोक रेखांकित करता है कि अध्यात्म योग, आत्म-साक्षात्कार के योग का योगी, ज्ञान और स्थिर चिंतन के माध्यम से खुशी और दुःख के द्वंद्वों को पार करता है।

इसके अतिरिक्त, बृहदारण्यक उपनिषद् योग की प्रकृति को मन की निपुणता और एकाग्रता के रूप में समझाता है:

"तस्मादेवंविच्छन्तो दन्त उपरातस्तितिक्षुः सम्मिलितो भूत्वाऽऽत्मनयेवात्मानं पश्यति।" **(**वृहदारण्यकोपनिषद्, **4/4/23)**

इसलिए, जो इंद्रियों को संयमित करके शांत, आत्म-अनुशासित और संतुलित है, वह स्वयं में लीन होकर आत्म-साक्षात्कार प्राप्त करता है। यह श्लोक बताता है कि आत्म-अनुशासन का अभ्यास करने, इंद्रियों को नियंत्रित करने और शांत और एकाग्र मन बनाए रखने से, साधक योग की स्थिति प्राप्त करता है, जहां उसे अपने भीतर सच्चे आत्म का अनुभव होता है।

विभिन्न उपनिषद् इस विचार को व्यक्त करते हैं कि योग का ज्ञान मुक्ति की ओर ले जाता है और मोक्ष प्राप्त करने के लिए ज्ञान और योग दोनों आवश्यक हैं। अमृतबिंदु उपनिषद् मुक्ति के लिए संवेदी सुखों से वैराग्य के महत्व पर प्रकाश डालता है:

"बन्धायविषयासक्तं मुक्त्यै निर्विषयं स्मृतम्।" **(**गर्दे एवं पोद्दार, सं° 2059, पृ. 100**)**

संवेदी वस्तुओं के प्रति आसक्ति बंधन की ओर ले जाती है, जबकि वैराग्य मुक्ति की ओर ले जाता है। यह जन्म और मृत्यु के चक्र से मुक्ति पाने के लिए आत्म-नियंत्रण और संवेदी संयम सहित योग का अभ्यास करने के महत्व को रेखांकित करता है।

हठ योग का वर्णन भी उपनिषदों मे योग के प्रमुख पक्ष के रूप में सांस (प्राण) और नियंत्रण (अपान) के मिलन की व्याख्या के अर्थ मे वर्णित है:

"प्राणपानसमायोगो ज्ञेयं योगचतुष्टयम्।" **(**Joshi et al., 2007, p. 502**)**

प्राण और अपान के मिलन को योग की चौथी अवस्था के रूप में जाना जाना चाहिए। यह श्लोक योग अभ्यास के मूलभूत पक्ष के रूप में महत्वपूर्ण शक्तियों, प्राण और अपान के मध्य सामंजस्य स्थापित करने के महत्व पर प्रकाश डालता है।

योग तत्व उपनिषद का निष्कर्ष है कि मुक्ति के लिए ज्ञान और योग दोनों आवश्यक हैं:

योगहीनं कथं ज्ञानं मोक्षदं भवति ध्रुवम्। योगो हि ज्ञानहीनस्तु न क्षमो मोक्षकर्म। " **(**योगतत्त्वोपनिषद्, **14,15)**

श्रीमद्भगवद्गीता में योग का अर्थ

श्रीमद्भगवद्गीता मुख्य रूप से कर्म योग की शिक्षा देती है। कर्म योग क्या है**?** इस संबंध में भगवान कृष्ण बताते हैं:

"योगः कर्मसु कौशलम्।" (श्रीमद्भगवद्गीता, **2.50)**

योग क्रिया अर्थात् कर्मों में कुशलता है। यहाँ, कार्य कुशलता को विवेक के साथ कर्तव्यों का पालन करने, सत्य और असत्य के मध्य अंतर को पहचानने और कार्यों के फल के प्रति आसक्ति के बिना अपने दायित्वों को निभाने के रूप में परिभाषित किया गया है। वैराग्य का अभ्यास करके व्यक्ति परम पद को प्राप्त कर सकता है। श्रीमद्भगवद्गीता में कर्म योग की एक और अभिव्यक्ति इस प्रकार वर्णित है:

"सिद्ध्यसिद्ध्योः समो भूत्वा समत्वं योग उच्यते ॥" (श्रीमद्भगवदगीता, **2.48)**

अर्थात् सफलता और असफलता में एक समान रहना ही योग कहलाता है। यह श्लोक सफलता या विफलता की परवाह किए बिना मन की समता बनाए रखने, दोनों के साथ समान मानसिकता से व्यवहार करने पर जोर देता है। यह कार्यों के परिणामों से जुड़े न रहने के महत्व को रेखांकित करता है।

इसके अतिरिक्त, श्रीमद्भगवद्गीता वियोग योग पर चर्चा करती है, जो योग का एक रूप है जो सुख और दुख के प्रति वैराग्य की विशेषता है:

"तं विद्याद् दुःखसंयोगवियोगं योगसंज्ञितम्।" (,श्रीमद्भगवद्गीता **6.23)**

अर्थात उसे योग समझें जो दुख के संपर्क से वियोग है। योग के इस रूप में सुख और दुख के द्वंद्वों से अप्रभावित रहना, वैराग्य के माध्यम से उन्हें पार करना और आंतरिक संतुलन बनाए रखना सम्मिलित है।

भगवान कृष्ण अर्जुन को योग के मार्ग पर सफलता प्राप्त करने के लिए अभ्यास और वैराग्य के महत्व पर सुझाव देते हैं:

"असंशयं महाबाहो मनो दुर्निग्रहं चलम्। अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येण च गृह्यते।।" (श्रीमद्भगवद्गीता, **6.35)**

निस्संदेह, हे महाबाहु अर्जुन, मन चंचल और अस्थिर है, इसे नियंत्रित करना कठिन है। लेकिन अभ्यास (अभ्यास) और वैराग्य (वैराग्य) के माध्यम से, हे कुंतीपुत्र, इसे नियंत्रित किया जा सकता है।

यह श्लोक मन को नियंत्रित करने की चुनौतियों पर प्रकाश डालता है और सुझाव देता है कि निरंतर अभ्यास (अभ्यास) और वैराग्य (वैराग्य) मन पर नियंत्रण पाने के साधन हैं।

इसके अतिरिक्त, भगवद्गीता भक्ति योग और ध्यान योग के मार्ग का वर्णन करती है:

"अभ्यासयोगयुक्तेन चेतसा नान्यगामिना। परमं पुरुषं दिव्यं याति पार्थानुचिन्तयन्। " (श्रीमद्भगवद्गीता, **2.70)**

वह व्यक्ति जो इच्छाओं के निरंतर प्रवाह से व्यथित नहीं होता है - जो नदियों के समान समुद्र में प्रवेश करता है, जो सदैव भरा रहता है लेकिन सदैव शांत रहता है - अकेले ही शांति प्राप्त कर सकता है, न कि वह व्यक्ति जो ऐसी इच्छाओं को पूरा करने का प्रयास करता है। यह श्लोक परमात्मा पर केंद्रित ध्यान (ध्यान) के महत्व को दर्शाता है, जिससे व्यक्ति परम दिव्य चेतना प्राप्त कर सकता है।

इस प्रकार श्रीमद्भगवद्गीता कर्म योग को कुशल कार्य के मार्ग के रूप में प्रस्तुत करती है, जो परिणामों के प्रति आसक्ति के बिना कर्तव्यों का पालन करने पर जोर देती है। यह योग के विभिन्न रूपों का परिचय देती है, जैसे सफलता और असफलता में समभाव बनाए रखना, सुख और दुख के प्रति वैराग्य (वियोग योग) और मन को नियंत्रित करने में अभ्यास और वैराग्य का महत्व। इसके अतिरिक्त, गीता भक्ति योग पर चर्चा करती है, दिव्य चेतना प्राप्त करने में भक्ति और ध्यान के महत्व पर प्रकाश डालती है।

<u>हठयोगिक ग्रंथों मे योग का अर्थ</u>

'हठ' **(Haṭha)** शब्द दो अक्षरों 'ह' **(Ha)** और 'ठ' **(Ṭha)** से मिलकर बना है। उपनिषदों में हठ योग में 'ह' और 'ठ' के संबंध को इस प्रकार समझाया गया है:

"हकारेण तु सूर्यः स्यात् थकारेणेन्दुरुच्यते। सूर्यचन्द्रमसोरैक्यं हत्थ इत्यभिधीयते।" (योगशिखोपनिषद्, 133)

'ह' **(Ha**) ध्वनि से सूर्य का संकेत मिलता है, और 'ठ' **(Ṭha)** से चंद्रमा का संकेत मिलता है। सूर्य और चंद्रमा के मिलन को हठ कहा जाता है।" इस संदर्भ में, 'ह' सूर्य का प्रतीक है, और 'ठ' चंद्रमा का प्रतिनिधित्व करता है। हठ योग में सूर्य और चंद्रमा की ऊर्जा को एक साथ लाना सम्मिलित है, जो विपरीतताओं के मिलन का प्रतीक है। 'ह' ध्वनि दाहिनी नासिका से जुड़ी है, जो सौर या सूर्य स्वर से संबंधित है, जबकि 'ठ' बाईं नासिका से जुड़ी है, जो चंद्र या चंद्र स्वर से संबंधित है। ये दोनों स्वर रीढ़ की हड्डी के साथ चलने वाली मध्य सुषुम्ना नाड़ी के दोनों ओर स्थित इड़ा और पिंगला नाड़ियों से जुड़े हुए हैं। प्राणायाम के माध्यम से इड़ा और पिंगला नाड़ियों के माध्यम से प्राण (जीवन शक्ति) के प्रवाह को संतुलित करने से, सुषुम्ना नाड़ी सक्रिय हो जाती है, जिससे मानसिक शांति की स्थिति उत्पन्न होती है जिसे हठ योग के रूप में जाना जाता है।

शिव संहिता में मानव शरीर को तीन लाख (तीन लाख) सूक्ष्म नाड़ियों के रूप में वर्णित किया गया है, जिसमें 14 प्रमुख नाड़ियाँ हैं, और तीन मुख्य नाड़ियों- पिंगला, इड़ा और सुषुम्ना को महत्वपूर्ण मानती हैं:

"सार्धलक्षत्रयं नाडयः सन्ति देहान्तरे नृणाम्। एतासु तिस्त्रो मुख्यास्स्युः पिलेडासुषुम्णिका।" (शिव संहिता 2.13-15, 2006, पृ. 21**)**

मानव शरीर के भीतर साढ़े तीन लाख नाड़ियाँ हैं। उनमें से ये तीन मुख्य मानी जाती हैं- पिंगला, इड़ा और सुषुम्ना।" इनमें से सुषुम्ना नाड़ी को ब्रह्म नाड़ी भी कहा जाता है। प्राणायाम के साथ इन सूक्ष्म नाड़ियों के माध्यम से प्राण के प्रवाह को सुसंगत बनाने से सुषुम्ना नाड़ी में स्थिरता प्राप्त होती है, जिससे हठ योग की वांछित स्थिति प्राप्त होती है, जिसे समाधि कहा जाता है।

हठ योग ग्रंथों में मानव शरीर में दस मुख्य प्राणों का उल्लेख है:

"प्राणोऽपानः समानश्चोदानो व्यानश्च पञ्चमः । नागः कूर्मश्चकृकरो देवदत्तो धनञ्जयः ।" (शिव संहिता 3.4)

प्राण, अपान, समान, उदान और व्यान - ये पाँच मुख्य प्राण हैं। नाग, कूर्म, कृकल, देवदत्त और धनंजय पाँच उप-प्राण हैं। हठ योग की प्रथाओं में प्राणायाम जैसी विशिष्ट तकनीकें सम्मिलित हैं, जिसमें प्राण और अपान वायु के प्रवाह को नियंत्रित और संतुलित करना सम्मिलित है, जिसका उद्देश्य उन्हें नाभि के क्षेत्र में एकजुट करना है। हठ योग में इस प्रक्रिया को अक्सर 'ह' **(Ha)** और 'ठ' **(Ṭha)** के मिलन के रूप में जाना जाता है।

राजयोग में, 'रज' शब्द का अर्थ सर्वोच्च या वह है जो सब पर प्रभुत्व रखता है। राजयोग को अन्य सभी से उत्तम योग माना जाता है। इसे सभी योगों का स्वामी या लक्ष्य माना जाता है, जिसे मोक्ष या समाधि कहा जाता है। हठ प्रदीपिका में स्वामी स्वात्माराम ने राजयोग को इस प्रकार परिभाषित किया है:

"राजयोगः समाधिश्च उन्मनि च मनोन्मनी। अमरत्वं लयस्तत्त्वं शून्यं परं पदम्।
अमनस्कं तथद्वैतं निरालम्बं निरञ्जनम्। जीवनमुक्तिश्च सहजा तुर्या चेत्येकवाचकाः।" (हठप्रदीपिका, 4/3-4**)**

अर्थात राजयोग समाधि, उन्मनी, मनोन्मनी, अमरता, विघटन, परम वास्तविकता, शून्य, शून्य से परे, सर्वोच्च स्थिति है। इसे अमानस्का (नासमझ), अद्वैत (गैर-द्वैत), निरालाम्बा (असमर्थित), निरंजना (अशुद्धियों के बिना), जीवन्मुक्ति (जीवित रहते हुए मुक्त), सहज (प्राकृतिक), और तुर्या (स्व की चौथी अवस्था) के रूप में भी वर्णित किया गया है। ।

राजयोग में विभिन्न शब्द सम्मिलित हैं जो आत्म-प्राप्ति की अंतिम स्थिति को दर्शाते हैं, जैसे समाधि, उन्मनी और मनोनमणि, जो मन के अमरता और सर्वोच्च वास्तविकता की स्थिति में विलीन होने का प्रतीक हैं। राजयोग की स्थिति प्राप्त करने के लिए ऐसे अभ्यास सम्मिलित हैं जो जीवित रहते हुए जीवनमुक्ति या मुक्ति की ओर ले जाते हैं। हठ प्रदीपिका आगे इस बात पर जोर देती है कि हठ योग और राजयोग दोनों अंतिम लक्ष्य की प्राप्ति में परस्पर जुड़े हुए हैं:

"केवलं राजयोगाय हठविद्योपदिष्यते।" (हठ प्रदीपिका, 1.2**)**

"सर्वे हठलयोपाय राजयोगस्य सिद्धये।" (हठ प्रदीपिका 4.103)

हठ और लय, सभी अभ्यास केवल राजयोग के लिए सिखाए जाते हैं। हठ और लय की सभी विधियाँ राजयोग की प्राप्ति के लिए हैं।इससे ज्ञात होता है कि हठ योग के अभ्यास और विघटन प्रक्रियाएं (लय) राजयोग की स्थिति प्राप्त करने में सहायक हैं। समाधि की प्राप्ति के लिए दोनों मार्गों का सामंजस्य आवश्यक है, और कोई भी दूसरे के बिना पूरा नहीं होता है:"हठं विना राजयोगो राजयोगं विना हठ: । न सिद्ध्यति ततो युग्ममानिष्पत्ते: समाभ्यसेत्।" (हठ प्रदीपिका 2.76)

हठ योग के बिना, कोई राजयोग नहीं है, और राजयोग के बिना, कोई हठ योग नहीं है। इसलिए, समाधि की प्राप्ति तक दोनों का एक साथ अभ्यास किया जाना चाहिए। मन और प्राण के मध्य संबंध पर जोर दिया गया है, और प्राणायाम और यम-नियम की प्रथाओं को क्रमशः हठ योग और राजयोग के आवश्यक घटकों के रूप में स्पष्ट किया गया है:

मनो यत्र विलीयेत पवनस्तत्र लीयते। पवनो लीयते यत्र मनस्तत्र विलीयते।। (हठ प्रदीपिका 4.23)

प्राणायाम आदि द्वारा प्राणजय करने की प्रक्रिया हठयोग तथा विवेक और वैराग्य द्वारा यम-नियम के पालन से मनोमय करने की प्रक्रिया राजयोग कहलाती है। हठ योग में प्राणायाम के माध्यम से प्राण को जीतने की प्रक्रिया, और राजयोग में यम-नियम का पालन करते हुए विवेक (विवेक) और वैराग्य (वैराग्य) के माध्यम से मानसिक शुद्धि प्रक्रिया दोनों मार्गों का अभिन्न अंग हैं।

निष्कर्ष

विभिन्न ग्रंथों में स्पष्ट किए गए योग के बहुमुखी अर्थों की इस खोज की परिणति में, एक गहरा सामंजस्य और सुसंगतता उभरती है, जो एक ऐसी चित्रयवनिक बुनती है जो विविध दृष्टिकोणों को एक विलक्षण उपाय से जोड़ती है। संस्कृत व्याकरण और पाणिनि के मूल क्रियाओं के वर्गीकरण के माध्यम से खोजी गई भाषाई उत्पत्ति, 'योग' शब्द की व्याख्याओं में एक सूक्ष्म प्रगति को प्रकट करती है। समाधि के प्राथमिक अर्थ से लेकर संबंध, मिलन और नियंत्रण के द्वितीयक अर्थों तक, भाषाई सूक्षमताओं के माध्यम से एक सामंजस्यपूर्ण धागा चलता है, जो योग की समग्र समझ की नींव रखता है।

व्यास और महर्षि पतंजलि जैसे श्रद्धेय संतों की टिप्पणियाँ इस समझ को और समृद्ध करती हैं, जो मानसिक उतार-चढ़ाव के संयम और समाधि की स्थिति की प्राप्ति के रूप में योग के प्राथमिक लक्ष्य को सशक्त करती हैं। इसके बाद यात्रा वैदिक छंदों, उपनिषदों और श्रीमद्भगवद्गीता के माध्यम से सामने आती है, जहां प्राचीन द्रष्टा योग को विरोधों के मिलन, मन पर काबू पाने और मुक्ति की ओर ले जाने वाले ज्ञान की खोज के रूप में प्रस्तुत करते हैं। भगवद गीता में भगवान कृष्ण की शिक्षाएं, जिनमें कर्म योग, वियोग योग और भक्ति योग सम्मिलित हैं, व्यापक कथा में परतें जोड़ती हैं, जो योगिक यात्रा के भीतर विविध मार्गों के अंतर्संबंध को स्पष्ट करती हैं।

जैसे-जैसे हठ योग पर ध्यान केंद्रित होता है, 'ह' **(Ha**) और 'ठ' **(Ṭha)** की परस्पर क्रिया का पता लगाया जाता है, जिससे प्राणायाम जैसी प्रथाओं के माध्यम से प्राण को संतुलित करने के महत्व का पता चलता है। हठ योग और राजयोग की अंतिम अवस्था के बीच संबंध स्पष्ट हो जाता है, एक सहजीवी संबंध स्थापित होता है जहां प्रत्येक एक दूसरे को पूरक और बढ़ाता है। राजयोग, जिसे श्रेष्ठ योग के रूप में जाना जाता है, समाधि, उन्मनी और जीवनमुक्ति जैसे तत्वों को शामिल करते हुए, योग प्राप्ति के शिखर को समाहित करता है।

इस प्रकार, योग के इन विविध अर्थों में सामंजस्य स्पष्ट हो जाता है - एक सुसंगतता जो भाषाई बारीकियों और ऐतिहासिक युगों से परे है। योग के विभिन्न आयाम, चाहे वे व्याकरणिक जड़ों से उपजे हों, वैदिक ज्ञान से, या श्रीमद्भगवद्गीता से, एक एकीकृत समझ में एकीकृत होते हैं। हठ और राजयोग का अंतर्संबंध योग मार्ग की समग्र प्रकृति के प्रमाण के रूप में कार्य करता है, जहां शरीर और मन दोनों की शुद्धि प्राण और मानसिक क्षमताओं के सामंजस्य के साथ जटिल रूप से जुड़ी हुई है।

सन्दर्भ- सूची

1. योग का अर्थ एवं परिभाषा (2024, Jan. 22). प्राक्शास्त्री प्रथम वर्ष प्रथम सत्रार्द्ध. Central Sanskrit University. https://www.sanskrit.nic.in/syllabus/Prak_Shastri/PS_1_Sem_Yoga.pdf
2. योग का अर्थ एवं परिभाषा (2024, Jan. 22). प्राक्शास्त्री प्रथम वर्ष प्रथम सत्रार्द्ध. Central Sanskrit University. Ihttps://www.sanskrit.nic.in/syllabus/Prak_Shastri/PS_1_Sem_Yoga.pdf
3. Patanjali and Vyas (1998). Patanjali's Yogasutra (R. Prasad, Trans.). Munshiram Manoharlal.
4. पतंजलि (1997). योगसूत्र (नंदलाल दशोरा, व्याख्या.). गीताप्रेस गोरखपुर ।
5. श्री कृष्ण. श्रीमद्भागवद्गीता |
6. भर्तृहरि (2006) वाक्यपदीय (ब्रह्मकाण्ड). (शि. अवस्थी, विवरणकार). चौखम्बा विद्याभवन|
7. श्रीवास्तव, सुरेशचन्द (2006). पातंजल योगदर्शनम् (व्यासभाष्य संवलितम् तच्च योगसिद्धि हिन्दी व्याख्योपेतम्), चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन ।
8. ऋग्वेद 1-5-3
9. ऋग्वेद, 1-30-7
10. अथर्ववेद, 19-8-2
11. कठोपनिषद्, 2-3-11
12. कठोपनिषद्, 1/2/12
13. वृहदारण्यकोपनिषद्, 4/4/23
14. गर्दे, एल.एन. (सं° 2059). कल्याण योगांक (दसवें वर्ष का विशेषांक). (हनुमान प्रसाद पोद्दार, सम्पा.), , गीताप्रेस |
15. Joshi, K.L., Bimali, O.N., Trivedi, B. (Eds.). (2007) Amritabindupanishad. (Board of Scholars, Trans.), Parimal Publications.
16. योगतत्त्वोपनिषद्, 14/15
17. श्रीमद्भगवद्गीता,2.50
18. श्रीमद्भगवद्गीता, 2.48
19. श्रीमद्भगवद्गीता, 6.23

20. श्रीमद्भगवद्गीता, 6.35
21. श्रीमद्भगवद्गीता,2.70
22. योगशिखोपनिषद्, 133
23. शिवसंहिता. (2006) (राघवेन्द्र शर्मा राघव, अनुवादक). चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान |
24. शिव संहिता ,3.4
25. हठप्रदीपिका, 4/3-4
26. हठ प्रदीपिका, 1.2
27. हठ प्रदीपिका, 4.103
28. हठ प्रदीपिका ,2.76
29. हठ प्रदीपिका, 4.23

Poonam Shodh Rachna